ISSN: 2393-8900 IMPACT FACTOR : 1.9152(UIF) VOLUME - 4 | ISSUE - 12 | AUGUST - 2018

HISTORICITY RESEARCH JOURNAL

बागेश्वर के अनुसूचित जातियों का सामाजिक स्तरीकरण

डॉ. बी. सी तिवारी[1] , सुश्री पुष्पा दानू[2]
[1]एसोसिएट प्रोफेसर ,इतिहास विभाग , राज. स्ना. महा. बागेश्वर .
[2]शोधार्थी (इतिहास) , राज. स्ना. महा. बागेश्वर .

प्रस्तावना :

भगवान ने केवल दो जातियॉ स्त्री–पुरुष बनायी उनके अपने गुण–धर्म अलग–अलग हैं इनका रहन–सहन एक जैसा है वस्तुतः ये एक दूसरे के पूरक हैं ये समाज का सृजन करते हैं यह जिस समाज का सृजन करते हैं उसे अधिक खुशहाल बनाने के लिए सतत् प्रतिबद्व रहते हैं

समाज **सत्यम् शिवम् सुन्दरम्** के विचार धाराओं से प्रेसित था परन्तु धीरे–धीरे समाज मे भोग–विलास तथा कुटिल चालों का प्रणेता जैसे लोगों से ग्रसित हो गया यही लोग समाज मे व्याप्त दुःख और अव्यवस्था को फैलाते हैं इन्हीं लोगों की वजह से धर्म की हानि, जातिवाद, धर्मान्धता, क्षेत्रवाद, रंगभेद, लिंगभेद, ऊँच–नीच गरीबी– अमीरी, वर्गभेद, की भावनाएँ फैलती हैं समाज मे इन्हीं व्याप्त अव्यवस्थाओं से वर्गभेद, जातिवाद की भावनाएँ आती हैं जिससे समाज अनेक वर्गों मे विभाजित हो जाता है।

भारतीय समाज मे वर्णव्यवस्था का प्रथम साक्ष्य उत्तरवैदिक काल मे मिलता है।[1] उस समय ऊँच–नीच का किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था ऋग्वेद मे वर्णित है कि ऋषि कहता है **'मै स्त्रोत हूँ, पुत्र भिशक और कन्या यव– भर्जन करिणी अर्थात चक्की पीसने वाली है।' अर्थात** एक ही परिवार मे चारों वर्णों के व्यक्ति पाए जाते हैं चारों वर्णों की व्यवस्था इस प्रकार की गई है जिस प्रकार मनुष्य शरीर मे भिन्न–भिन्न कार्य करने के लिए मुह, हाथ,उरु, पैर, जंघा है उसी प्रकार समाज के हित के लिए मनुष्यों को चार प्रमुख वर्णों जैसे–जो कर्मठ एवं सेवाभावी व्यक्ति जीवन के आधार की आवश्यकताओं को पूरा करने तथा अन्न उत्पादन, वस्त्रादि बनाने, गृह निर्माण और अस्त्र–शस्त्र तैयार करने के कार्य मे दक्ष एवं समर्थ थे। शूद्र वर्ण के नाम से विख्यात हुए

यजुर्वेद मे श्रमजीवी कारीगर अर्थात शिल्पकार का विशेष सम्मान के साथ गौरवगान किया गया है–**नमस्तक्षभ्यों रथकारभ्यश्च वो नमः "**

नमो कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्चयों नमः।।

अर्थात ब्राह्मण (बुद्विजीवी) और शुद्र (श्रमजीवी) एक ही श्रेणी मे आते हैं इनकी स्थिति मे कोई अन्तर भेद नहीं है।[2] वेदों का अध्ययन एवं यज्ञ चारों वर्णों के लोग आपस मे मिलजुलकर करते थे भविष्य पुराण का वाक्य इस संबंध मे दृष्टव्य है–

ब्राह्मणः क्षत्रियःवैश्याः भाूद्राये भाूचयोश्शमलसः
तेशां मन्त्राः प्रदेवा वैन तु संकीर्णधर्मिणाम्।।

महाभारत के वाक्य भी इस संबंध मे उल्लेखनीय हैं

चत्वारो वर्णा यज्ञमिमं वहन्ति ।
ब्राह्मणः क्षत्रियाः वैश्याः भाूद्राश्च कृतलक्षणाः
कृते युगेसंभवन् स्वकर्म निरताः प्रजा।।[3]

भारतीय संविधान के भाग 16 मे कुछ वर्गों के संबंध मे विशेष उपबंध किए जाने का प्रावधान हैं। इन्हीं प्रावधानों के अधीन विशिष्ट समुदायों को अनुसूचित जाति है अनुच्छेद 341 मे अनुसूचित जाति और अनुच्छेद 342 मे अनुसूचित जनजातियों को विनिर्दिष्ट किए जाने का प्रावधान है।[4] 314 अनुच्छेद मे दलित जातियों सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक विकास के लिए एक अनुसूची बनायी गई और इन अनुसूची मे सम्मिलित जातियों को अनुसूचित जातियों का दर्जा दिया गया ।

अनुसूचित जातियों का स्तरीकरण वह प्रक्रिया है जिसमे व्यक्तियों के समूहों को उनकी प्रतिष्ठा, संपत्ति और शक्ति की मात्रा के सापेक्ष पदानुक्रम मे विभिन्न श्रेणियों मे उच्च से निम्न रूप मे स्तरीकृत किया जाता है वर्ग स्तरीकरण विश्वव्यापी है

18 सितम्बर 1976 ई.के आदेश द्वारा इन्हें 65 जातियों कें अर्न्तगत रख गया है इनमे शिल्पकार को कोई पृथक जाति न मानकर अपितु यह कर्मकारों के एक समूह को शिल्पकार के नाम से जाना जाता है– तॉबे के बर्तन बनाने वाला टम्टा, लौह के औजार बनाने वाले लोहार, बॉस, रिंगाल के कायों को करने वाला रूड़िया, मकान बनाने वाला ओड़, लकडी का काम करने वाला बढ़ई (वैदिक काल मे लकड़ी के कार्य को करने वाले के लिए तक्षन शब्द का प्रयोग किया जाता है)

ब्याह शादियों मे तिमिल पतों की ब्यवस्था तथा चुल्हा बनाने वाले को पौहरी, और कोल्हू से तेल निकालने वाले को तेली या भूल आदि अनेक उपजातियों के नाम से जाना जाता है डॉ. आर. बी. पन्त ने उत्तराखण्ड़ की अनुसूचित जातियों का अध्ययन करते हुए यहॉ के निवासी सभी शिल्पकारों को र्निविवाद रूप से अनुसूचित जाति की श्रेणी मे रखते हुए अटकिंसन के द्वारा सम्पादित हिमालयी गजेटियर मे उद्धरण किया है कि प्रथम जनगणना 1872 के अनुसार तत्कालीन कुमायूॅ एवं गढ़वा लमे अनुसूचित जातियों के अर्न्तगत 1,04,936 अर्थात 10 फीसदी आबादी है।[5]

शिल्पकार शब्द का सही अर्थ– शिल्पकला करने वाला। इनका कार्य भवन निर्माण भी होता है इसीलिए इन्हे औड़ भी कहा जाता है। शिल्पी समुदायों मे भी आपसी वर्गभेद के साथ–साथ उच्च व निम्न वर्ग मिलते **हैं** **पं. बद्रीदत्त पाण्डे** ने इन्हें चार श्रेणियों मे बांटा है–

प्रथम श्रेणी–कोली, टम्टे, औड़, लौहार।
द्वितीय श्रेणी–भूल, रूड़िया, चिमड़िया, आगरी, पहरी।
तृतीय श्रेणी– शूद्र, चमार, मोची, बखरिया, धूना, हनकिया।
चतुर्थ श्रेणी– वादी, हुड़किया, दरजी, ढोली, भॉड व हलिया।

सनवाल के अनुसार खलेत के वर्ग मे दास,ढोली, दमाई और औजी आते हैं और मांगखाणी के अर्न्तगत हुड़की, वादी, मिरासी, नट आदि आते हैं।[6]

आदि वैदिक संस्कृति मे समाज तीन वर्गों मे विभाजित था जैसे– ब्राह्मण, क्षत्रिय, और विष। यही वर्गीकरण हिमालय के परंपरागत समाज मे ब्राह्मन, क्षत्रियऔर दास– शिल्पकार वर्णों मे पहचाना जा सकता है वस्तुतः कुमायूॅ के अभिलेखों मे दास–शिल्पकार को 'विस' नाम से संबोधित किया गया है जो एक दीर्घ कालीन परंपरा का द्योतक है।

सिन्धु घाटी सभ्यता और उत्तर सिंधु घाटी सभ्यताओं मे भी ताम्र– कांस्य कर्मकारों का बालबाला था क्योंकि मनुष्य द्वारा जिस धातु का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया था वह तॉबा ही था और तॉबा मे टिन मिलाकर कॉसा तैयार किया जाने लगा इसीलिए सिंधु सभ्यता को कॉस्य युगीन सभ्यता के नाम से जाना जाता है वर्तमान समय मे बागेश्वर मे टम्टा, आगरी, लौहकर्मी का कार्य करने वाले लौहकर्मी आदि निवास करते हैं।[7]

यहॉ का समाज मूलतः बिठ (ब्राह्मण एव राजपूत) और शिल्पकार वर्ग मे विभक्त रहा है और दास की गणना शिल्पकार वर्ग मे की जाती है जो व्यवसायगत ढ़ोलवादकों मे जाने जाते हैं। का आधार एक समान व्यवसायों के सामाजिक नियन्त्रण के दृष्टिगत किया गया होगा। क्योंकि किसी भी व्यक्ति के व्यवसाय चयन मे केवल जाति बंधुओं का नैतिक नियन्त्रण तथा सामाजिक प्रतिबंध ही कारण है क्योंकि जाति और व्यवसाय के मध्य निकटतम संबंध होता है शिल्पकारों मे भी सामाजिक दृष्टि से पारंपरिक उॅच्च– नीच,खान–पान वैवाहिक विभेद विभिन्न रूपों मे दृष्टिगत होता है पेशे की विशिष्टता तथा महत्व के कारण कोली– बुनकर तथा ओड़ को उच्च स्थान प्राप्त था। अपने को उच्च जाति का मानने वाले ओड़ या कोली दासों के हाथों का भात (पका चावल) ग्रहण नहीं करते थे जातिगत विशिष्टता से उसमे उॅच्च– नीच की भावना रहती थी।

औजियों के अपने आश्रयदाता 'बिठ' ठाकुर कहलाते थे ये ब्राह्मण और राजपूत दोनों होते थे इन ठाकुरों के गॉव परिवार उनकी वृत्ति कहलाती थी। इन परिवारों के साथ उनके बड़े आत्मीय संबंध रहते थे।[8]

दास अपने वृत्ति के ठाकुर परिवारों से प्रत्येक फसल पर डंडवार (फसल) लेते रहे हैं। इसकी मात्रा आश्रयी ठाकुर की सामर्थ्य पर तथा परंपरागत रूप से निर्धारित होती थी।

औजी जजमानी ग्रामों मे वाद्ययंत्र वादन के ग्रामों के कपड़े की सिलाई काकार्य भी करते थे इसीलिए औजी को दर्जी नाम से भी जाना जाता है अपने जजमानी गॉव मे ठाकुरों के परिवारों के सुख– दुख मे सदैव साथ देने वाला यह वर्ग,दास वर्ग के नाम से भी जाना जाता है मध्यकाल मे अपने ठाकुर परिवार के सदस्य की मृत्यु पर सिर मुंडवाने के कारण **'खरमुंण्ड़ादास'** कहलाते थे इस वर्ग के व्यक्तियों के नामान्त मे दास शब्द प्रयुक्त होता है इस कारण बाजगी, औजी, दर्जी सभी लोग दास–ढोली और औजी– दर्जी के नामों पुकारे जाते थे

औजियों की वृत्ति को 'डंडवार' कहा जाता है जबकि ब्राह्मणों की वृत्ति को जजमानी कहा जाता है।[9] औजी के समान हुड़किया भी आशु कवि होते हैं यह गद्य– पद्य मिश्रित चम्पू शैली मे प्राचीन भड़ों (वीर योद्धाओं) के पंवाड़े (वीरगाथाओं) को सुनाकर अपनी आजीविका चलाते थे मिरासी लोग ढोलक, सारंगी हारमोनियन बजाकर गीत गाया करते थे और अपनी आजीविका चलाते थे। शिल्पकार वर्ग ही हमारी लोक संस्कृति के संरक्षक व संवहक रहें हैं औजी,बढ़ई ,लुहार, रूड़िया, धुनिया टम्टा, कोली जातियों मे हमारी भौतिक संस्कृति को समृद्ध करने मे अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।[10] यजुवेंर्द का कृतज्ञ ऋषि समाज के शिल्पियों और आधारभूत कर्मियों को इन सम्मान भरे शब्दों से अभिनन्दन करता है। जिन्हें परवर्ती कालों मे अस्यपृश्य और निम्नवर्ग का मान लिया गया–

"प्रणाम है कंचुकियों और भंडारियों को
नमस्कार है बढ़इयों और रथकारों का
नमन है कुम्हारों और धातुशिल्पियों का
नमस्ते धनुशबाण र्निमाताओ को और
शिकारी कुत्तों वाले आखेटकों को।"

यजुर्वेद के तीसवें अध्याय मे 52 प्रकार के उद्योग कर्मियों का किया गया है इनमे बढ़ई, कुम्हार, राजमिस्त्री, से लेकर चमड़ा, बॉस, रेशे का कार्य करने वाले ही नहीं अपितु कुट्टी काटने वाले, धोबी, रंगरेज, धीवर, ग्वाला, गड़रिया, कोचवान, महावत, लकड़हारा और सुरा बनाने वाला आदि सम्मिलित थे।

टाज के समाज मे प्रचलित शिल्पकार शब्द हमारे कलाकार बंधुओं का वैदिक कालीन संबोधन है शिल्व का पर्यायवाची वैदिक शब्द **'कारू'** भी था शिल्प शब्द का पर्याय अनेक ग्रन्थों मे अलग–अलग अर्थ मिलता है अमरकोश मे **कारू** शब्द शिल्प का पर्यायवाची है **भातपथ ब्राह्मण** मे शिल्प चित्रकला, कौशतकी मे नृत्य, गायन, जातको मे संगीत हेतु, वामन पुराण मे गणित हेतुएकशब्द प्रयुक्त हुआ है वाल्मीकि के राम वैहारिकाना

शिल्पना विज्ञाता थे, तो भरत मुनि की चित्रलेखा शिल्पकारिका। पाणिनी काल मे कंठ संगीत व वाद्य संगीत दोनों ही शिल्प कहलाते हैं।[11]

अटकिंसन ने सवा सौ वर्ष पूर्व शिल्पकारों की 25 उपजातियॉ अभिलिखित की हैं जो चार वर्गों मे विभाजित हैं–

प्रथमवर्ग मे सात श्रेष्ठ जातियों मे कोली, टम्टा, लोहार, ओड़, तिरबा, बेड़ाऔर द्योड़ी हैं द्वितीय वर्ग मे रूड़िया, चुनारा, आगरी, पहरी, भुल, हैं तृतीय वर्ग मे चमार, मोची, बुखुड़िया, धूना तथा पर्जे हैं और चतुर्थ वर्ग मे बाड़ी, हुड़किया, दर्जी, ढ़ोली, और भांड आदि। उत्तराखण्ड के गॉवो मे औढ़ और बढ़ईगिरी का कार्य कतिपय ठाकुर भी करते आए हैं।[12]

कत्यूरी काल मे भी शिल्पकारों के तीन वर्ग थे

प्रथम वर्ग– हस्त शिल्पी वर्ग
द्वितीय वर्ग–वादक–नतर्क वर्ग
तृतीय वर्ग–ग्रामसेवक वर्ग।

प्रथम वर्ग – प्रत्येक गॉव मे सभी वर्ग के लोग रहते थे इनका निवास स्थान अलग–अलग होता है जिनका आपस मे खाने पीने तथा शादी–विवाह मे छुआ–छूत प्रलित थी। ब्राह्मण, क्षत्रियों , खशों व शिल्पकारों मे उच्च नीच का प्रभाव था ओड़ मिस्त्री का काम वस्तु शिल्प मंदिर भवनों, प्रासादों, नौलों एवं दबे प्रतिमाओं का निर्माण करते थे इन्हें समाज मे उच्च स्थान प्राप्त था।[13] कोली तेल निकालने का कार्य करते थेऔर कपड़े बुनने का कार्य भी करते थे छिपी वर्ग का कार्य कपड़ो को रंगने तथा छपाई का कार्य होता था।इनकी तुलना स्थानीय रंगरेज से की जा सकती है आगरिया, धनौरिया, लोहार, तिरुवाआदि लोहे के विभिन्न उत्पादों का निर्माण एवं खनन करते थे। टम्टॉ ताबे के बर्तन तथा वाद्य यंत्र बनाते थे तथा ताम्र मूतियों का निर्माण करते **थे।**[14] धोणी या धुनेर जाति के लोग प्रमुख नदियों से सोने चॉदी छॉटने का कार्य करते थे सुनार र्स्वण, चॉदी एवं लौह के बारीक आभूषण बनाते थे तथा ताम्रपत्र, लौह शलाकों एवं पाषाण लेख लिखने का कार्य करते थे कत्यूरी काल मे भी रूड़िया, शिल्पकार सोल्टी, कण्डी डलिया टोकरी चटाई एवं कोण्डे (अनाज रखने के बड़े बर्तन बनाने का कार्य करते थे) ।[15] हणकिया उत्तराखण्ड के कुम्हार हैं जो मिट्टी के घड़े, दीपक, हाण्डी, बत्तख (पानी हेतु) हिंसरा(चबेना घुनने की कढ़ाई) आदि बनाते थे।[16]

द्वितीय वर्ग मे बेड़ा–वादी जाति का कार्य कलाबाजी, पटाबाजी, नृत्य, स्वांग, हास– परिहास नाटक करना था। उत्तराखण्ड़ मे यह संगीत के जन्मजात उपासक, लोककवि व नर्तक है।[17] दास/औजी यहॉ के ढोल सागर के ज्ञाता थे जो विभिन्न सामाजिक, धार्मिक एवं मांगलिक अवसरों पर ढोल– नगाड़े एवं तुरही का प्रयोग कियाजाता था इन दासों को विरूदावली एवं राजवली मौखिक याद रहती थी कत्यूरी काल मे भी युद्धमे भी सैनिकों मे जोश भरने के लिए ढ़ोल–लगाड़े एवं तुरही का प्रयोग किया जाताथा।[18] कत्यूरी राजाओं की वंशावली का वर्णन ढ़ोल बजाने वाले खेकदास द्वारा इस प्रकार वर्णित किया गया है–

राजा असन्ती वासन्ती
गोरा सावोला,ईलण,तिलण
बड़ा राजा पीथेरा, प्रीथमदेव
सूरीज तपनी का राजा धामदेव।[19]

तृतीय वर्ग मे सभी निम्न स्तर के आते थे जो अपने शिल्पकारों व ग्रामीणों की सेवा करते थे।

प्रहरी– चौकीदार सूचनाओं को एक स्थान से दूरे स्थान को प्रेषित करते थे वागड़ी– ये शिकार मे राजा की सहायता करते थे

बाड़े–पशु– पक्षियों की देख – रेख करना एवं धार्मिक कायों के लिए प्शुओं की व्यवस्था करना

बखरिया– यह राजाओं के घोड़े व युद्ध मे जाने वाले एवं अन्य प्शुओं की देख भाल करते थे

झूलिया– ग्रामीण मंनोरंजन हेतु विभिन्न गतिविधियों का संचालन करना

नगरबी या पुम्पी– यह मृत जीवी पशुओं की खाल व उससे चर्म वाद्य यंत्रों की पूड थैले बनाने का कार्य करते थे

पतर– यह शादी– विवाह मे पत्ते लाने एवं फैकने का कार्य करते थे।[20]

सन्दर्भ ग्रन्थ–

01 चमन लाल प्रद्योत, प्रवीन कुमार भट्ट, अरुण कुकसालः 2012 विनसर पब्लिशिंग क्ं देहरादून उत्तराखण्ड के प्रमुख शिल्पकार पृ. सं. 15
02 उपरोक्त पृ. सं. 33
03 उपरोक्त पृ. सं. 34
04 त्रिपाठी, केशरी नंदनः 2015 नागरी प्रेस इलाहाबाद उत्तराखण्ड एक समग्र अध्ययन पृ. सं 234,236।
05 रुवाली, डॉ. नीरजः 2017 आधारशिला प्रकाशन, Discovering the Himalayas; पृ. सं. 422।
06 नेगी, ड़ॉ विधाधर सिंहः 2011 मल्लिका बुक्स दिल्ली कुमाउॅ का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास 11वीं से 18वीं शताब्दी पृ. सं 95
07 चमन लाल प्रद्योत, प्रवीन कुमार भट्ट, अरुण कुकसालः 2012 विनसर पब्लिशिंग क्ं देहरादून उत्तराखण्ड के प्रमुख शिल्पकार पृ. सं. 71,72।
08 उपरोक्त पृ. सं. 93, 94।
09 उपरोक्त पृ. सं. 102, 103।
10 उपरोक्त पृ. सं. 118
11 उपरोक्त पृ. सं. 131,132।
12 उपरोक्त पृ. सं. 136।
13 रतूडी, हरिकृष्णः विनसर पब्लिकेशन देहरादून, गढ़वाल का इतिहास, पृ. सं 90
14 लोहनी, भाष्करानंदः कुमाऊॅ गाथाऍ पृ. सं 207
15 जोशी, माहेश्वर प्रसादः 2011अल्मोड़ा बुक डिपो , मध्य हिमालय की अनुसूचित एवं पिछड़ी जातियॉ पृ. सं 17
16 टम्टा, सुरेश चंद्रः 2011अल्मोड़ा बुक डिपो, वर्तमान अतीत– मध्य हिमालय का शिल्प,शिल्पकार एवं नृ–पुरातत्व, पृ. सं 47
17 पाण्ड़े, जोशी व पोखरियाः कुमाऊॅ हिमालय की परंपरागत प्रोद्योगिकी, पृ. सं 32
18 जोशी, माहेश्वर प्रसादः 2011अल्मोड़ा बुक डिपो , मध्य हिमालय की अनुसूचित एवं पिछड़ी जातियॉ पृ. सं 30
19 जोशी, माहेश्वर प्रसादः 2011अल्मोड़ा बुक डिपो , मध्य हिमालय की अनुसूचित एवं पिछड़ी जातियॉ पृ. स 31
20 जोशी, माहेश्वर प्रसादः 2011अल्मोड़ा बुक डिपो , मध्य हिमालय की अनुसूचित एवं पिछड़ी जातियॉ पृ. स 15।